अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के विकास एवं प्रसार में शिक्षा की आवश्यकता व भूमिका

डॉ.पी.के.पाटील[1], डॉ.रेखा गुप्ता[2]
[1](प्राचार्य) वर्धमान महाविद्यालय, इटारसी (म.प्र) भारत
[2](प्राचार्य, बी.एड़) आईसेक्ट विश्वविद्यालय,रायसेन (म.प्र) भारत

I प्रस्तावना

विश्व का कोई भी राष्ट्र ऐसा नहीं है, जो प्रत्येक दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर हो। प्राचीन काल से ही एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के सम्पर्क से अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता आ रहा हैं जब विश्व के दो या दो से अधिक राष्ट्रों में पारस्परिक आवागमन, विनिमय, विचारों का आदान–प्रदान, सहयोग आदि होते हैं तो हम इस पारस्परिक राष्ट्रीय सम्पर्क को अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना से सम्बोधित करते है। आज विश्व में बीसवीं शताब्दी की उपलब्धियों के कारण अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ है।वैज्ञानिक खोजों की व्यावहारिकता ने एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र से लम्बी दूरी को इतना कम कर दिया है कि व्यक्ति विविध यानों द्वारा विश्व के कई राष्ट्रों का भ्रमण कुछ ही घण्टों में कर सकता है। उद्योग की उन्नति तथा वैज्ञानिक खोजों के पारस्परिक योग ने कुछ देशों को इतना अधिक समृद्ध बना दिया है कि वे अपने उत्पादन को दूसरे राष्ट्रों में खपाना चाहते हैं, राजनैतिक गुटबन्दियाँ बनाकर व अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क द्वारा अपना बाजार स्थापित करना चाहते है। जैसे–जैसे आवागमन की सुविधायें, औद्योगिक विकास और मानव की आवश्यकताओं तथा सम्पर्क में वृद्धि होती गयी, अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क की भावना विकसित होती चली गयी। वैज्ञानिक खोजों ने आत्मनिर्भरता के स्थान पर पारस्परिक निर्भरता की वृद्धि की है। यह परस्पर निर्भरता सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में भी पनपने लगी है। इस परस्पर निर्भरता के कारण पारस्परिक सम्बन्धों में वृद्धि हुई है। लोगों की राष्ट्रीय प्रवृत्ति अब अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति में परिवर्तित होने लगी है। विश्व नागरिकों में सहकारिता, सहिष्णुता और विश्व अवबोध प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं। मानव संहार की योजनाओं के फलस्वरूप आणविक प्रगति के दुष्परिणामों को देखकर विश्व के लोग सद्भावनापूर्वक बन्धुत्व में बँधकर रहना चाहते हैं। सभी विचारक और चिन्तक शिक्षा के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीयता के अवबोध के प्रसार की बात कहते हैं। यह सुझाव स्वीकार करते हुए हनें शिक्षा का पुनर्संगठन अन्तर्राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों के आधार पर करना होगा।अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा व्यवस्था करते हुए हमें शिक्षा सिद्धान्तों, पाठ्यक्रमों और शिक्षण विधियों, शिक्षकों और शिक्षालयों के वातावरण में अन्तर्राष्ट्रीयता का समावेश करना चाहिए।

II अन्तर्राष्ट्रीयता की समस्या

गत दो विश्व युद्धों के परिणामों से विकम्पित होकर मानव विश्व में शान्ति की स्थापना होने की कामना करने लगा है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्कों की वृद्धि के साथ–साथ विश्व शान्ति के लिए सफल प्रयास भी किये गये हैं, परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी विश्व में शान्ति नहीं हो पाती । विश्व भौतिकता के पीछे इतना स्वार्थपूर्ण दृष्टिकोण अपनाए हुए है कि विश्व के लोग दूसरों के अधिकारों का अपहरण करने में संकोच नहीं करते और एक तनाव की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीयता का अवबोध एक समस्या बन गया है। अन्तर्राष्ट्रीयता के अवबोध में निम्नलिखित बातें प्रमुख रूप में बाधक होती हैं–

(क) भग्नाशा और शोषण की प्रवृत्ति– मानव आशाओं पर जीता है और विविध कामनाओं एवं इच्छाओं के आश्रय पर जीवन ढकेलता है। इन इच्छाओं की वृद्धि होने पर मनुष्य की आवश्यकतायें भी बढ़ जाती हैं। दूषित सामाजिक व्यवस्था के कारण जब मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति के लिए साधन उपलब्ध नहीं होते और आवश्यकतायें पूरी नहीं होतीं तो मनुष्य में भग्नाशा उत्पन्न हो जाती है। यही भग्नाशा, युयुत्सा की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है और युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सुख समृद्धि की लालसा ने व्यक्ति को विविध अपेक्षाएँ करने के लिए प्रेरित किया है। इन अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए उपयुक्त साधन न मिलने पर व्यक्ति उन्हें दूसरों से छीनने की दिशा में प्रयत्नशील हो जाता है। इस प्रकार सामाजिक वातावरण दूषित हो जाता है और शोषण की प्रवृत्ति पनपने लगती है। शोषण की प्रवृत्ति सुख समृद्धि की लालसा और भग्नाशा के कारण उत्पन्न होती है। ऐसी कुसामाजिक दशा में जिसका शोषण होता है वह इसका विरोध करता है और तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह बात व्यक्ति के स्थान पर राष्ट्रीयता की भावना के कारण राष्ट्रों के मध्य भी घटती है और राष्ट्र अशान्त वातावरण उत्पन्न कर देते है। इस अशान्त वातावरण द्वारा ही अन्तर्राष्ट्रीयता पर आघात होता है।

(ख) शक्ति, प्रतिष्ठा और लाभ की प्राप्ति की प्रेरणा – वैज्ञानिक अनुसन्धानों और आविष्कारों ने शक्ति को इतना भौतिकवादी बना दिया है कि उनके आधार पर उसकी शक्ति, प्रतिष्ठा और लाभ पाने की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है। वैज्ञानिक ज्ञान की अभिवृद्धि द्वारा प्रकृति पर नियन्त्रण करके प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते हुए मानवोपयोगी उत्पादन होने लगे हैं। एक राष्ट्र इस होड़ में आगे जाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करता है, यदि उसके पास आवश्यक प्राकृतिक संसाधनों की कमी होती है, तो वह उन्हें दूसरे राष्ट्रों से प्राप्त करने का प्रयास करता है। यह प्रयास बलजन्य

शोषण का भी हो जाता है। ऐसे शोषण द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष छिड़ना स्वाभाविक ही लगता है। शक्तिशाली राष्ट्र प्राकृतिक संसाधनों और शक्तियों पर अधिकार जमाने के लिए निर्बल परन्तु साधन सम्पन्न राष्ट्रों को हड़पने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय भावना क्षीण होकर विश्व अशान्ति का रूप ले लेती है।

III अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के प्रयास

विश्व को अशान्ति का क्षेत्र बनने से रोकने के लिए तथा विश्व नागरिकों को अन्तर्राष्ट्रीयता की समझ देने के लिए प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् से ही प्रयास होने लगे थे। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् शान्तिप्रिय राष्ट्रों ने लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना करके संघर्षरत राष्ट्रों की मध्यस्थता करने के लिए प्रयास किये, परन्तु लीग ऑफ नेशन्स को विश्व शान्ति स्थापित करने में सफलता नहीं मिली। द्वितीय विश्व युद्ध फिर छिडा और आणविक अस्त्रों की मार से विश्व भयभीत हो गया। मानव संहार और धन हानि को देखकर विश्व के बड़े राष्ट्रों ने विश्व भर में शान्ति स्थापित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन किया । इस संघ के सभी प्रयास सफल हुए हों ऐसी बात नहीं। अब भी राष्ट्रों के मध्य गुटबन्धी की भावना बल पकड़ रही है। भयभीत राष्ट्र अपने सैन्य बल को शक्तिशाली बनाकर सशक्त बनने का प्रयास कर रहे हैं। कुछ विकासशील राष्ट्र समृद्ध राष्ट्रों से सैन्य सामग्री के प्राप्त करने के समझौते कर रहे हैं और पड़ोसी राष्ट्रों के लिए अशांन्ति का कारण बन रहे हैं। यदि इस बार पुनः विश्व युद्ध छिड़ता है तो भारी आयुधों और आणविक अस्त्रों के उपयोग से मानव संस्कृति और सभ्यता का लोप हो जायेगा; विश्व की सुख शान्ति लोप हो जायेगी। अतः अब अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध का प्रसार करना चाहिए। इस प्रयास में मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक साधन सहायक सिद्ध होंगे, इनका विकास करना चाहिए।

IV अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध हेतु शिक्षा की आवश्यकता

विश्व भर के सभी राष्ट्र गणतन्त्रात्मक शासन प्रणाली के पक्ष में हैं और वे अपनी आवश्यकतानुसार इस प्रणाली को अपने व्यवहार में भी ला रहे हैं। जैसे सिद्धान्त गणतन्त्रात्मक व्यवस्था में निश्चित किए जाते हैं वैसे व्यवहार में नहीं लाए जाते। यही कारण है कि राष्ट्रीय स्तर पर योग्य नागरिक नहीं मिलते । अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए गणतन्त्रात्मक जीवन व्यतीत करना बहुत आवश्यक हैं। हमारे जीवन में प्रतियोगिता के स्थान पर सहकारिता का भाव आना चाहिए। विविध सामाजिक और राजकीय व्यवस्थायें, गणतन्त्रात्मक सिद्धान्तों पर आधारित करते हुए सामाजिक और प्रशासनिक सुव्यवस्थाएँ लायी जा सकती है। उत्पादन और वितरण के विविध राजकीय साधन,विद्यालय, परिवार और परिषदें सभी कुछ गणतन्त्रात्मक सिद्धान्तों पर विकसित किये जायें, परन्तु यह सब तभी होना सम्भव है जब शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जाये कि नागरिक गणतन्त्रात्मक सिद्धान्तों से परिचित होकर उनका अनुपालन करने लगें और सहकारी जीवन व्यतीत करने लगें। "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना का प्रसार करने के लिए हमें शिक्षा के लक्ष्य इस प्रकार निर्धारित करने चाहिए कि व्यक्तियों में विश्व नागरिकता, अन्तर्राष्ट्रीयता और मानवीय सहयोग के गुण उत्पन्न हो सकें। राष्ट्रीयता की भावना यद्यपि राष्ट्र के सभी नागरिकों को एक सूत्र में आबद्ध रखती हैं, परन्तु वह अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग में बाधक सिद्ध होती हैं। हमें शिक्षा पाठ्यक्रम का निर्माण अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ही करना चाहिए। शिक्षण प्रक्रिया में भूगोल, इतिहास, भाषा, विज्ञान, साहित्य आदि के माध्यम से राष्ट्रीय भावना के साथ अन्तर्राष्ट्रीय भावना का विकास करना आवश्यक होंगा। यह विचारधारा प्रत्येक नागरिक के मन से निकालनी होगी कि उसका ही राष्ट्र सर्वोत्तम है। अपनी तीव्र राष्ट्रीयता की भावना के कारण ही व्यक्ति अन्य राष्ट्रों के साथ सहकारिता का भाव न अपनाकर प्रतिद्वन्द्विता और ईर्ष्या में लीन रहता हैं। उसमें इस भावना के आते ही अन्य राष्ट्रों के शोषण की भावना जागृत हो जाती है।

V शिक्षा सिद्धान्तों का अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए चयन

गणतन्त्रात्मक जीवन प्रणाली अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास में बहुत अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है। इस गणतन्त्रात्मक जीवनयापन दशाओं में व्यक्ति को स्वतन्त्र चिन्तन, स्वतन्त्र निर्णय और स्वतन्त्र भाव प्रकाशन का अवसर मिलता है। नागरिक में सहिष्णुता द्वारा ही अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध को लाया जा सकता है। अंतः सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा की व्यवस्था करते समय गणतन्त्रात्मक शिक्षा सिद्धान्त को स्वीकार करना होगा। विश्वभर के लोग एक कुटुम्ब के समान जीवन व्यतीत करें, ऐसी उदार मानवीय भावना का विकास तभी सम्भव है जब शिक्षा सिद्धान्तों के चयन अथवा निर्धारण में मानव के प्रति आदर की भावना को समाविष्ट किया जाये। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीयता की दृष्टि से शिक्षा की पुनर्व्यवस्था करते हुए मानवता के प्रति आदर की भावना के सिद्धान्त को स्वीकार करना चाहिए।यह धारणा ठीक है कि व्यक्ति को स्वावलम्बी बनते हुए राष्ट्रीयता की भावना रखनी चाहिए, परन्तु यह इतनी उग्र नहीं होनी चाहिए कि वह केवल अपने ही राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी रहते हुए अन्य राष्ट्रों के प्रति प्रतिद्वन्द्विता का भाव धारण करके उनसे ईर्ष्या रखे, वरन् उसे चाहिए कि वह अन्य राष्ट्रों के प्रति सहकारिता और प्रेम का भाव रखे।व्यक्ति समाज में रहते हुए जैसे अन्य व्यक्ति से भयभीत रहता है उसी प्रकार विश्व के राष्ट्र एक– दूसरे से संदिग्ध स्थिति में रहकर भयतीत रहते हैं। इस भय का कारण व्यक्ति–व्यक्ति और राष्ट्र–राष्ट्र में विश्वास का अभाव है। शिक्षा का पुनर्सगंठन, अन्तर्राष्ट्रीयता की दृष्टि से इस सिद्धान्त पर किया जाना चाहिए कि व्यक्ति अन्य व्यक्ति के प्रति और राष्ट्र अन्य राष्ट्र के प्रति आस्था, विश्वास और सहानुभूति रख

सके। व्यक्तिवादी विचारधारा के लोग शिक्षा द्वारा यही भावना उत्पन्न करना चाहते है कि व्यक्ति, व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना सीखे परन्तु अन्तर्राष्ट्रीयता के युग में सामुदायिक रूप में सामूहिक उत्तरदायित्व निर्वाह करने की क्षमता उत्पन्न हो, ऐसा प्रयास करना चाहिए। समाज और संसार में यदि कोई बुराई , पाप, अशान्ति है तो उसके लिये समाज और विश्व का प्रत्येक व्यक्ति उत्तरदायी हैं। दूसरे पर दोषारोपण करके सामूहिक उत्तरदायित्व से नहीं बचा जा सकता । इसलिए अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा का पुनर्सगंठन करते समय सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना के सिद्धान्त को स्वीकार करना चाहिए।अन्तर्राष्ट्रीयता के अवबोध में एकता और भावना बहुत सहयोगी हुआ करती है। हमें शिक्षा की व्यवस्था करते समय छात्रों को यह अनुभव करने का अवसर प्रदान करना चाहिए कि विश्व एक परिवार हैं, हम सब पारिवारिक सदस्य हैं। जैसे एक परिवार के सदस्य प्रेमपूर्वक, सहकारी जीवन व्यतीत करते हुए रहते है वैसे ही हमें भी प्रेमपूर्वक, सहकारी जीवन व्यतीत करते हुए रहना चाहिए। व्यक्ति का व्यवहार पूर्ण सामाजिक और मानवीय होना चाहिए जिससे कि विश्व के व्यक्ति पर विश्वास कर सकें और सहयोग का हाथ बढ़ा सकें।

VI अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा पाठ्यक्रम तथा शिक्षण

हमें अन्तर्राष्ट्रीयता के अवबोध के लिए शिक्षा व्यवस्था करने के लिए शिक्षा पाठ्यक्रम के पुनर्सगंठन पर विशेष ध्यान देना होगा। शिक्षा पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय हमें उपर्युक्त शिक्षा सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए विषयक ज्ञान को अन्तर्राष्ट्रीय भावना से समन्वित करना होगा। शिक्षा पाठ्यक्रम में इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र के द्वारा सामाजिक और मानव संस्कृति के विकास का ज्ञान कराना चाहिए। पाठ्यकृम के उपर्युक्त विषयों को राष्ट्रीयता की सीमा में आबद्ध नहीं करना चाहिए। विज्ञान, साहित्य और कला विषयों को मानवोपयोगी और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा। विश्व के सभी साहित्यों का सामान्य ज्ञान पाठ्यक्रम में संजोना उपयुक्त होगा। शिक्षक, शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख आधार होता है। शिक्षक के शिक्षण का ढंग उसकी व्यक्तिगत शैली का परिमाण होता है। यदि शिक्षक, अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विषयों को पढ़ाने और ज्ञान को अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना से समन्वित कर दे तो बालकों में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना से समन्वित कर दे तो बालकों में अन्तर्राष्ट्रीयता अवबोध जाग्रत हो सकता है। भूगोल के माध्यम से विश्व के विविध निवासियों के पूर्ण जीवन परिचय, भौगोलिक दशायें,राजनैतिक, आर्थिक नीतियाँ तथा सांस्कृतिक और सामाजिक प्रगतियाँ इस ढ़ंग से प्रस्तुत की जाये कि बालकों में उनके प्रति जिज्ञासा, विश्वास और सहिष्णुता उत्पन्न हो तो अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास होने में सरलता हो सकेगी। इतिहास का अध्ययन करते समय राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण में परिवर्तित कर देना उचित होगा। इतिहास का स्वरूप मानव सभ्यता और संस्कृति के रूप में प्रस्तुत किया जाना ही लाभकारी हो सकता है। किसी भी ऐतिहासिक घटना का प्रभाव विश्व की गतिविधियों पर किस प्रकार और क्या पड़ा, इसका अध्ययन कराने में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास में सहयोग प्राप्त हो सकेगा। केवल राष्ट्र के ही महान पुरूषों के जीवन चरित्र न पढ़ाये जाकर विश्व भर के महान पुरूषों के जीवन परिचय पढ़ाये जाने चाहिए। किसी भी वैज्ञानिक अथवा औद्योगिक गवेषणा तथा अनुसंन्धान कार्य को किसी एक राष्ट्र का न समझकर विश्व भर के मानवों की सम्पत्ति मानते हुए शिक्षण प्रक्रिया में संजोना चाहिए। साहित्य, अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास में सर्वाधिक सहायक होगा। साहित्य का शिक्षण संकुचित दृष्टिकोण से न देकर मानवीय दृष्टिकोण से दिया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम में विश्व के प्रमुख साहित्यों को स्थान दिया जाना उपयुक्त होगा और मानवीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हुए उनके विकास के लिए प्रयत्नशील रहना होगा। कला मानव विकास के लिए अभिव्यक्ति और संस्कृति के प्रसार का माध्यम है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व को समुन्नत कलाओं का अध्ययन कराकर मानव विकास की सभ्यता पर दृष्टिपात कराना चाहिए। अर्थशास्त्र, विज्ञान तथा विविध विषय अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास की दृष्टि से उपयुक्त माध्यम सिद्ध होते हैं। विश्व के शान्ति काल में आर्थिक, व्यावसायिक, वैज्ञानिक और व्यापारिक प्रगतियाँ अच्छी प्रकार होती हैं, परन्तु युद्ध की स्थिति आने पर इन सबका विकास रूक जाता है। यह बात बालकों को समझाकर विश्व में शान्ति स्थापित करने की भावना पर बल देना आवश्यक होगा। समय की आवश्यकताओं का वैज्ञानिक तथा आर्थिक क्रियाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है। युद्धकाल में अर्थ और विज्ञान का उपयोग मानव संहार के लिए आयुध और हथियार निर्माण करने में होता है जबकि शान्ति काल में मानव कल्याण में प्रयुक्त होता है। इन सभी भावनाओं के विकास में शिक्षण एवं शिक्षा पाठ्यक्रम अधिक प्रभावशाली होती हैं जिन पर ध्यान देना चाहिए।

VII अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास में अध्यापक का दायित्व

छात्र एवं छात्राओं में अन्तर्राष्ट्रीयता के अवबोध का विकास करने में अध्यापक बहुत महत्त्वपूर्ण साधन होता है। अध्यापक का व्यक्तिगत विश्वास, निर्णय, दृढ़ता कौशल और शिक्षण बालकों में वैसे ही भाव उत्पन्न करता है। यदि कोई अध्यापक अन्तर्राष्ट्रीयता के विश्वास और भाव से सम्पुष्ट होगा तो बालकों पर उसकी इस भावना का अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। इसलिए अध्यापक का दृष्टिकोण पूर्णरूपेण अन्तर्राष्ट्रीयता के अवबोध से अवश्य परिचित करायेगा। शिक्षक के लिए आवश्यक है कि विश्व एक समाज है और कुटुम्ब के समान है। जैसे कुटुम्ब के प्रत्येक सदस्य का निर्वाह पारस्परिक सहयोग, विश्वास और दायित्व से होता है वैसे ही विश्व के प्रत्येक नागरिक का होना चाहिए। प्रेम, दया सहानुभूति, सहिष्णुता, सहकारिता और संद्भावना

व्यक्तियों को एक–दूसरे के निकट लाते है परन्तु द्वेष, घृणा, विरोध, अविश्वास एक–दूसरे को पृथक् करते है। अतः शिक्षक में अन्तर्राष्ट्रीयता के प्रति दृढ़ आस्था और विश्वास होना चाहिए। शिक्षक में गणतन्त्रात्मक मान्यताओं और गणतन्त्रात्मक सिद्धान्तों के प्रति विश्वास की भावनाओं का होना बहुत आवश्यक है। गणतन्त्र में विश्वास रखने वाला शिक्षक स्वतन्त्र चिन्तन, स्वतन्त्र निर्णय, स्वतन्त्र भाव प्रकाशन के कार्यो के अवसर प्रदान कर सकता है जिनकी अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास में बहुत आवश्यकता ळें

VIII अन्तर्राष्ट्रीयता और शिक्षालय

शिक्षालयों का वातावरण शिक्षार्थियों पर बहुत प्रभाव डालता है। उत्तम और समुचित शिक्षालय का वातावरण बालक को सीखने की प्रक्रिया में सहयोग देता है और सुविधाएँ जुटाता है। अन्तर्राष्ट्रीयता की शिक्षा के विकास के लिए जनतन्त्रात्मक सहानुभूतिजन्य स्वतन्त्र वातावरण निर्मित करके शिक्षालयों को आकर्षक बनाया जाना चाहिए। शिक्षालयों में अन्तर्राष्ट्रीय संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाहियों के अनुरूप जनतन्त्रात्मक वातावरण जुटाकर अन्तर्राष्ट्रीयता विषयक गोष्ठियों संयोजित की जानी आवश्यक है। विद्यालय में संयुक्त राष्ट्र संघ दिवस मनवाकर अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास कार्यक्रम संचालित करने चाहिए। राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्वो को अन्तर्राष्ट्रीयता के स्वरूप में परिवर्तित करके मानना ठीक होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ के बाल सदस्य बनाकर अन्तर्राष्ट्रीय आयोजनों में सम्मिलित होने का अवसर देना चाहिए। वाद–विवाद, भाषण, गोष्ठी, सम्मेलन आयोजित करके अन्तर्राष्ट्रीयता से परिचित कराना चाहिए।

IX अन्तर्राष्ट्रीयता और संयुक्त राष्ट्र

संयुक्त राष्ट्र संघ ने 25 जून ,1945 ई. को सेनफ्रासिस्कों में संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य निश्चित किये थे। इन उद्देश्यों को शैक्षिक दृष्टिकोण से अग्रलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है

(क) विश्व शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के उद्देश्य की पूर्ति के लिए विश्व के सभी राष्ट्रों के साधनों को स्वीकार करके न्याय और अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अनुसार विवादों को हल करना।

(ख) विश्व के सभी राष्ट्रों को समान अधिकार देकर नीतियों के निर्धारण की पूर्ण स्वतन्त्रता देना, पारस्परिक मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना और व्यापक शान्ति स्थापित करने के लिए विविध साधन जुटाना।

(ग) मानव अधिकार तथा स्वतन्त्रता सिद्धान्तों को सर्वमान्य कराने के लिए जाति भाषा वर्ग धर्म और लिंग पर ध्यान न देकर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं का हल अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खोजना।

X अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा विज्ञान तथा संस्कृति संस्था के प्रयास

संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा विज्ञान तथा संस्कृति संस्था (यूनेस्को) की स्थापना करके अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध को विकसित किया गया है। यू. एन.ओ के संविधानानुसार "युद्ध का प्रारम्भ मनुष्य के मस्तिष्क से ही होता है। अतः मनुष्य के मस्तिष्क में ही शान्ति सुरक्षा स्थापित करनी चाहिए।"अतः यूनेस्को ने उपर्युक्त संविधान की दृष्टि से अग्रलिखित तीन उद्देश्यों को पूर्ण करने का प्रयास किया है–(i) विश्व राष्ट्रों में पारस्परिक ज्ञान तथा अवबोध उत्पन्न करना। (ii) संस्कृति तथा शिक्षा का प्रसार करना। (iii) ज्ञान की सुरक्षा, वृद्धि और प्रसार करना।

यूनेस्को द्वारा सार्वभौमिक, सार्वलौकिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक समस्याओं के हल खोजे जाते हैं। यूनेस्को, कृषि, स्वास्थ्य, खगोल विज्ञान तथा कला आदि की समस्यायें राष्ट्र, भाषा, संस्कृति से अनुबद्ध न होकर सार्वलौकिक और सार्वभौमिक रूप में हल करती है । इस संस्था द्वारा रेडियों ,चलचित्र तथा प्रकाशन के माध्यम से सार्वहितकारी विकास योजनाएँ प्रसारित की जाती हैं। यूनेस्को का प्रयास है कि वह सभी राष्ट्रो के हित की शिक्षा का विकास करके अन्तर्राष्ट्रीयता के अवबोध की जाग्रति करे। यूनेस्को ने 1947 ई. में अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा पर एक गोष्ठी की थी जिसमें प्रस्तावित सुझावों को माध्यमिक शिक्षा स्तर पर सामाजिक अध्ययन के माध्यम से पढ़ाया जाना चाहिए। इन सुझावों में अग्रलिखित सिद्धान्त लागू होते हैं।

(क) सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण में विश्व के सभी प्रमुख अंग समाविष्ट हों।

(ख) विद्यार्थी को विश्व समस्याओं की किसी एक महत्त्वपूर्ण अंग में रूचि दिलायी जाय।

(ग) विश्व के भौगोलिक अध्ययन में राष्ट्र के प्राकृतिक संसाधनों का अध्ययन कराकर उन्हें विश्व की खाद्य समस्या के हल खोजने की बात प्रस्तुत की जाय।

(घ) सामाजिक विज्ञान के अध्ययन के अन्तर्गत मानव व्यंक्तित्व के विकास का अध्ययन इस दृष्टि से हो कि मानव सम्बन्ध स्थापित होने में सरलता हो।

(च) वर्ण ,धर्म संस्कृति, आर्थिक एवं शैक्षित स्तर का भेद किये बिना सामाजिक अध्ययन के माध्यम से मानव सम्पर्क में सौहार्द्रता उत्पन्न करनी चाहिए।

(छ) अन्तर्राष्ट्रीय तनाव तथा सहकारिता समस्याओं का हल सामाजिक विज्ञान के माध्यम से खोजकर संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यो पर ध्यान दिया जाय।

(ज) सामाजिक विज्ञान के अध्ययन द्वारा सामाजिक घटनायें और समस्याओं सोची विचारी जायें।

(झ) सामाजिक विज्ञान द्वारा समुचित बातों का ज्ञान देकर अभीष्ट मनोवृत्ति और कौशल का विकास करना चाहिए।

(ट) आलोचनात्मक तर्क शक्ति के विकास के साथ सामाजिक विज्ञान का अध्ययन कराना चाहिए।

(ठ) कक्षा, विद्यालय और समाज को प्रयोगशालायें मानकर सामाजिक विज्ञान के अध्ययन द्वारा नागरिकता की शिक्षा दी जायें।

उपर्युक्त संस्तुतियाँ जो यूनेस्को ने अपने सम्मेलन में प्रस्तुत की, अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा के विकास में मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। इन्हें अपनाकर और व्यवहार में लाकर अन्तर्राष्ट्रीयता के अवबोध का विकास करना चाहिए।

XI निष्कर्ष

वर्तमान काल में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह माना जाता है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध को जाग्रत करे। इसके लिए आवश्यक है कि इस प्रकार के अवबोध में जो कुछ भी बाधाएँ आएँ, उन्हे शिक्षा द्वारा हटाया जाये। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करने की शक्ति का विकास करना है। स्वतन्त्र विचारण द्वारा मनुष्यों में इस बात की क्षमता पैदा हो जायेंगी कि वे यह निर्णय कर सकेंगें कि कौन सी बात सत्य है और कौन सी बात असत्य हैं। कौन उचित है और कौन अनुचित है ? वे झूठे प्रचार से प्रभावित नहीं होगें और प्रत्येक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्या को सूझ , बुद्धिमत्ता और शान्ति से समझने की चेष्टा करेंगे। शिक्षा द्वारा युद्ध की भीषणता तथा मानव यन्त्रणाओं की ओर मनुष्यों का ध्यान आकर्षित किया जाता है। शिक्षा का ध्येय यहीं होता है कि मानव युद्धों से घृणा करने लगें और शान्तिपूर्वक रहना तथा एक–दूसरे की भावनाओं का आदर करना सीखें। शिक्षा, संकीर्ण राष्ट्रीयता के दोषों की ओर भी विश्व के नागरिकों का ध्यान आकर्षित करती है। संकीर्ण राष्ट्रीयता द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त "मेरा देश जो भी उचित या अनुचित करता है, ठीक हैं" का खण्डन भी शिक्षा द्वारा ही सम्भव हैं। शिक्षा एक–दूसरे राष्ट्र की पारस्परिक निर्भरता को स्पष्ट रूप से मनुष्यों के समक्ष प्रस्तुत करती है। आज का संसार ऐसा नहीं है कि इसमें कोई भी एक राष्ट्र दूसरे से हर बात में अलग रह सकें। प्रत्येक राष्ट्र को बहुत सी आवश्यक वस्तुओं के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ता है और उन्हें बहुत सी वस्तुओं का आयात करना पड़ता है। शिक्षा इसी ओर व्यक्ति का ध्यान दिलाकर अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ाती है। शिक्षा, अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास को उसी समय भली भाँति प्रतिपादित कर सकती है जब वह राष्ट्रों में एक–दूसरे के प्रति भय की भावना को कम कर दे। अन्तर्राष्ट्रीयता की शिक्षा का ध्येय यही है कि इस भय को भयभीत राष्ट्रों के मन से दूर करें और उनमें विश्वास एवं सद्भावना का विकास करे।शिक्षा के द्वारा ही केवल अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास सम्भव है। बरट्रेण्ड रसेल ने कहा है कि "शिक्षा चाहे राजनीतिक दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीयता को न ला सके, परन्तु शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा इस भावना का विकास होना सम्भव है।" शिक्षा के द्वारा ही जनमत का ध्यान अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर आकर्षित किया जा सकता है तथा जनमत ही आज के संसार में युद्ध या शान्ति का निर्णय करने का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। यदि जनमत की धारणा शान्ति की ओर है तो विश्व शान्ति की स्थापना सरल हो जाती है। इसीलिए शिक्षा का संगठन इस प्रकार होना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास करे। वर्तमान समय में जितनी भावना अन्तर्राष्ट्रीयता को प्रोत्साहित करने की है, उतनी मानव के इतिहास में कभी भी न थी। आज के विज्ञान ने संसार के देशों को एक–दूसरे के अधिक सन्निकट ला दिया है। कहीं भी संसार में कोई परिवर्तन होता है या क्रान्ति आती है तो वह संसार के समस्त देशों पर प्रभाव डालती है। एक राष्ट्र की आर्थिक या राजनीतिक दशा दूसरे राष्ट्रों को प्रभावित करती है। विश्व शान्ति के लिए यह आवश्यक हैं कि राष्ट्रों में एक– दूसरे के प्रति सद्भावना तथा सहयोग की भावना जाग्रत की जाये। अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा यह सम्भव हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1] अग्रवाल बी.बी. (2000) : आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा –2

[2] पाठक एवं त्यागी (2000) : शिक्षा के सिद्धांत, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

[3] त्यागी, गुरूसरनदास (2005) : भारतीय शिक्षा का परिदृश्य, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

[4] शर्मा, आर.के. (2005) : भारत में शैक्षिक व्यवस्था का विकास, राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा।

[5] सक्सेना,एन.आर. स्वरूप (2005): शिक्षा सिद्धांत, आर.लाल.बुक डिपो, मेरठ ।

[6] भटनागर, सुरेश (2008) :भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, आर.लाल.बुक डिपो, मेरठ।

[7] चौबे, डॉ. सरयू प्रसाद (2009) :शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार, श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा–2,

[8] माथुर ,एस.एस. (2010) : शिक्षा के दार्शनिक तथा समाज शास्त्रीय आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा–2

[9] अग्रवाल, जे.सी . (2010) : भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास, आर.एस.ए. इन्टरनेशनल, आगरा।

[10] पाठक,पी.डी. (2011) : भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा–2

[11] रूहेला, एस.पी. (2014) :शिक्षा के दार्शनिक तथा समाज शास्त्रीय आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा–2।